उपसंहार

वर्ण और वर्ग का समीकरण बड़ा ही विचित्र है। प्राचीन व्यवस्था से लेकर सांप्रतिक व्यवस्था तक ये तत्त्व हमारे समाज में विभाजन की नित नई कोटियाँ निर्मित करते रहे, परंतु इनमें भी परस्पर प्रकृतिगत पार्थक्य रहा है। वर्ण जहाँ स्थिर वर्ग है, वहीं वर्ग अस्थिर वर्ण है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में राष्ट्रीय बुर्जुआ की एक ऐतिहासिक भूमिका रही है। वह वर्ग एवं वर्ण के बांट-बटखरे स्वातंत्र्योत्तर अपने हित की रक्षा के लिए नित नवीन पद्धति से बनाता रहा है। स्वातंत्र्योत्तर यह वर्ग साम्राज्यवादियों के हितों का रक्षक बनकर एक नयी भूमिका एवं एक नए स्वरूप में सामने आता है। इसे स्वातंत्र्योत्तर सामंतों का भी समर्थन मिल जाता है याकि वे अपना विलय इस वर्ग में कर देते हैं। देश में ग़रीबी का नया चेहरा उभर कर सामने आता है। निजी क्षेत्र के विकास के साथ कदम-से-कदम मिलाने में असमर्थ सार्वजनिक क्षेत्र की सीमाओं के बीच फंसा मध्यवर्गीय व्यक्ति स्वयं को एक चौराहे पर पा रहा था और ऐसे में उसका विरोधी स्वर स्वयं ही अंतर्विरोध में गुम हो गया। 'प्रतिपक्ष' शब्द ही ऐसे में समाज की क़िताब से गायब हो गया। मिश्रित अर्थव्यवस्था में मजदूर भी सार्वजनिक एवं निजी उद्योगों में बंट गए। ऐसे में वर्ग संघर्ष यूटोपिया बनकर रह गया। ऐसे ही समय और ऐसी ही परिस्थितियों में ज्ञानरंजन का साहित्य हिंदी में इन्हीं युगीन प्रश्नों से जूझता हुआ प्रकट होता है।

ज्ञानरंजन की कहानियों से गुज़रते हुए यह लगता है कि वे अपनी कहानियों द्वारा नई सोच और नई संवेदना को ही विकसित नहीं करते बल्कि नई संरचना को भी विकसित करते हैं। उनकी कहानियाँ मध्यवर्गीय समाज में तेज़ी से व्याप्त हो रहे पारिवारिक संबंधों के तनाव को ही नहीं व्यक्त करतीं बल्कि उसके साथ-साथ व्यक्ति और व्यवस्था के द्वंद्व की ओर भी संकेत करती हैं तथा इसी क्रम में जीवन की विसंगतियों और मानवीय विडंबनाओं के परिदृश्य को

हमारे सामने लाती हैं । ज्ञानरंजन अपनी कहानियों में बाहरी परिवेश और मन:स्थितियों को, आंतरिक सच्चाइयों और बाह्य वास्तविकताओं को परस्पर उलझाकर, घुला-मिलाकर के स्थितियों में व्याप्त विसंगति और व्यंग्य का बड़े कायदे से नियोजन करते हैं ।

ज्ञानरंजन अपनी कहानियों में समसामयिक यथार्थ से जूझते हुए नज़र आते हैं । उनकी कहानियों में मध्यवर्ग का इतना सही विश्लेषण इसलिए भी हो सका क्योंकि वे स्वयं भी मध्यवर्ग से ही संबंधित थे और उनकी पारिवारिक संरचना भी इसी वर्ग-विशेष की मानसिकता से ग्रस्त थी । उन्होंने शैशव काल से युवावस्था तक इस वर्ग को बड़े ध्यान से देखा था ; परिवार में घटने वाली छोटी-से-छोटी घटना के प्रति भी वे बड़े सतर्क थे और इसी चौकन्नेपन ने उनकी सामाजिक दृष्टि को साफ़ बना दिया । उनकी कहानियों की रचना-प्रक्रिया के मूल में इस वर्ग के वर्गगत संस्कारों की एक बड़ी भूमिका रही है ।

ज्ञानरंजन की कहानियाँ साठोत्तरी कहानी के दौर से अपना संबंध रखती हैं । इस कहानी आंदोलन ने ज्ञानरंजन के कलाकार को गढ़ने में महती भूमिका का निर्वाह किया । इस कहानी आंदोलन के चरित्र का बड़ा गहरा प्रभाव ज्ञानरंजन की कहानियों पर भी पड़ा था । वस्तुत: साठोत्तर समाज में पैदा हुए मोहभंग की बड़ी गहरी छाप साठोत्तरी कहानी में दिखाई पड़ती है । इस मोहभंग के सर्जन के पीछे युवा पीढ़ी की वह हताशा थी, जो उसे उसकी दुनिया के न मिलने या न बनने पर उसके भीतर पैदा हुई थी । यह वही समय था, जब हमारे भारतीय समाज में नैतिकता एवं धर्म के अर्थ नवीन मूल्यों की दृष्टि से बन-बिगड़ रहे थे । इसी दौर में सामाजिक ढाँचे में बदलाव आया । संयुक्त परिवार

विघटन और व्यक्तिवादिता के पुंज बन गए । इसके परिणामस्वरूप रिश्तों की मर्यादा भी नष्ट होने लगी । इसी समय समाज में इतना परिवर्तन आया कि संबंधों से उष्मा ही समाप्त होने लगी, यहाँ तक कि एकल परिवारों में पति-पत्नी का संबंध भी सवालों के दायरे में आ गया । घर में घटित हो रही इन दुर्घटनाओं का प्रभाव संतान पर भी पड़ा, वहाँ भी संबंधों ने मर्यादा खो दी । प्रेम और यौन दृष्टि में भी परिवर्तन इस वक्त देखने को मिलता है । व्यक्तिगत दु:ख, कष्ट और पराजय की पीड़ा के साथ निराशा, ऊब और आत्महत्या की प्रवृत्ति को युगीन समस्याओं ने बढ़ावा दिया । ऐसे में व्यक्ति भीड़ के बीच अकेला तो हो ही गया, समाज एवं परिवार दोनों में ही 'मिसफिट' होने लगा । ये सोठोत्तरी कहानी की वे सच्चाइयाँ हैं, जो ज्ञानरंजन की कहानियों में बेनक़ाब हो जाती हैं । इन्हीं प्रतिमानों से वे साठोत्तर समय के मध्यवर्ग की खोज करते हैं और इसका ही प्रमाण है उनका कथा- साहित्य । यह ज्ञानरंजन का अपना क्षेत्र है, जिस पर उनका आदेश चलता है । यह उनके रचनाकार का केंद्र भी है । इसी बिंदु पर वे अपने साथी कहानीकारों से अलग हो जाते हैं क्योंकि इनके यहाँ सेक्स ही संबंध का पर्याय नहीं है बल्कि पारिवारिक-सामाजिक रिश्ते ही कहानी बुनते हैं । वे अंध भावुकता के हामी नहीं हैं और एक ईमानदार कलाकार के रूप में अपने युगीन यथार्थ की चीर-फाड़ बेबाक तरीके से निर्मम होकर करते हैं । यही वे विशेषताएँ हैं जिनके आधार पर ज्ञानरंजन साठोत्तरी कहानी में कहानीकारों की भीड़ में भी अलग परंतु विशिष्ट नज़र आते हैं ।

मध्यवर्ग पूंजीपति और मजदूर के बीच की कड़ी है । आर्थिक दृष्टि से उत्पादन में यह वर्ग न तो उत्पादन-साधनों का स्वामी होता है और न स्वयं ही किसी भौतिक मूल्य का उत्पादन करता है । इसी कारण यह वर्ग दफ़्तरी कर्मचारी और बुद्धिजीवी बनकर शासक वर्ग की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है । इस

दृष्टिकोण से देखने पर यह साफ़ हो जाता है कि मध्यवर्ग की चूंकि उत्पादन में कोई अहं भूमिका नहीं है, इसलिए वह डॉक्टर, कलाकार, लेखक, साहित्यकार, दार्शनिक, अध्यापक, वकील तथा अन्यान्य चिंतकों के रूप में बौद्धिक समुदाय का समुच्चय है और स्वयं में कोई वर्ग नहीं है । मनोवृत्ति की दृष्टि से भी यह वर्ग जहाँ उच्चवर्ग के साथ जुड़ा होता है, वहीं इसकी कतिपय विशेषताएँ निम्नवर्ग में भी मिलती हैं । मध्यवर्गीय समाज के लोग धनी एवं निर्धन वर्गों के बीच की कड़ी हैं और चूंकि यह वर्ग इतना व्यापक है, इसलिए कहीं तो इस वर्ग के लोग उच्चवर्ग के क़रीब दृष्टिगोचर होते हैं और कहीं निम्नवर्ग के । प्रेमचंद जैसे कथाकार ने किंचित (निम्न वर्ग के प्रति सहानुभूति रखते हुए भी) इसीलिए मध्यवर्ग को नज़रअंदाज नहीं किया । इस वर्ग की ढुलमुल नीति, परजीवीपन, सुविधाभोगी वृत्ति, झूठी शान-शौकत की रक्षा का प्रयास, उसका प्रदर्शन एवं आत्मकेंद्रिकता ने आज इसे इसकी ऐतिहासिक भूमिका से काट दिया है । उदारीकृत, भूमंडलीकृत समाज की सारी नीतियों के केंद्र में यही वर्ग है और बाज़ार के बीच अपनी नैतिकता की खोज में यह वर्ग भटक रहा है ।

ज्ञानरंजन की कहानियों में मध्यवर्ग की स्थिति को समझने के लिए उसे उस युग (सन् 1960 से सन् 1973 तक) के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं यौनिकता के परिप्रेक्ष्य में देखना उचित जान पड़ता है । मध्यवर्गीय व्यक्ति की राजनीति में सीधी भूमिका नहीं होती है, वह राजनीति को उसी सीमा तक स्वीकार करता है, जिस सीमा तक राजनीति उसके स्वार्थ को सिद्ध करने में साधक होती है । इसलिए ज्ञानरंजन की कहानियों में राजनीतिक पहलू मध्यवर्गीय छद्म की चादर ओढ़ कर कहीं-कहीं नज़र आता है, परंतु अपनी प्रकृति में यह सूक्ष्म है । ज्ञानरंजन की कहानियों में मध्यवर्गीय समाज का सामाजिक चरित्र खुलकर सामने आया है । वे यह साफ़-साफ़ दिखलाते हैं कि

यह वर्ग दिखावे की प्रवृत्ति, झूठी आधुनिकता का ढोंग, बनावटीपन का पाखंड रचने में सिद्धहस्त होता है। इसके साथ ही वह कहीं अपनी प्रकृति में संशयग्रस्त भी होता है। इस समाज में स्त्री-पुरुष के लिए अलग-अलग मानदंड भी बने हुए हैं और इस वर्ग की अपनी कई संकीर्णताएँ होती हैं। मध्यवर्गीय समाज का आर्थिक आधार उसकी सामाजिकता का सबसे अहं पहलू है। इस वर्ग की सामाजिक हैसियत इसके विभिन्न अंगों (उच्च एवं निम्न) में अलग-अलग होती है। अर्थगत संदर्भों में समृद्ध उच्च मध्यवर्ग जहाँ बुजुआ वर्ग के क़रीब होता है, वहीं निम्न मध्यवर्ग अपनी विपन्नता के कारण निम्न वर्ग के नजदीक ठहरता है। बेरोजगारी, आर्थिक शोषण, अर्थाभाव में आत्महत्या करने की वृत्ति के बीच संघर्षरत, हिसाबीपन और जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने की जद्दोजहद में लगे हुए इस वर्ग के व्यवहार में अर्थ की एक बड़ी भूमिका होती है। इसलिए जहाँ उच्च मध्यवर्ग का व्यक्ति अर्थ की अपेक्षा मानसिक समस्याओं से परेशान रहता है, वहीं निम्न मध्यवर्गीय व्यक्ति अर्थाभाव के कारण पारिवारिक कलह का शिकार होता है। वस्तुत: ज्ञानरंजन की कहानियों के केंद्र में निम्न मध्यवर्ग है, जो अर्थाभाव के कारण आत्मसम्मान के लंगड़ेपन से जूझ रहा है। यौनिकता का मध्यवर्गीय चेहरा बड़ा ही छद्मपरक है। यह वर्ग अपनी यौन भावनाओं के दमन एवं तत्संबंधी विकृतियों से ग्रस्त रहता है। इस वर्ग की यौन भावनाएँ संस्कृति एवं मर्यादा की गठरियों के भार के बीच दब जाती हैं एवं जब कभी इस क्षेत्र में अवसर प्राप्त होता है, इस वर्ग के लोग अपनी गरिमा का स्खलन कर देते हैं। ज्ञानरंजन ने अपनी कहानियों के द्वारा मध्यवर्ग की नब्ज को पकड़ा है, वे इसी क्रम में हमारे समाज के बुद्धिजीवियों के पाखंड एवं उनकी अवसरवादिता को भी बेनक़ाब कर देते हैं।

ज्ञानरंजन की कहानियों के मध्यवर्गीय पात्र मध्यवर्गीय समाज की

वैयक्तिकता, विसंगतिबोध, असंतोष, व्याकुलता, कुंठा, संत्रास एवं अकेलेपन-अजनबीपन की युगीन विडंबनाओं से त्रस्त हैं । इन पात्रों के माध्यम से ज्ञानरंजन के युग का मध्यवर्गीय व्यक्ति जीवित हो उठा है । ये पात्र इन स्थितियों से संघर्षरत मध्यवर्गीय शिक्षित नागर व्यक्ति की समस्याओं के जीवंत प्रतिरूप हैं । इन पात्रों के माध्यम से ज्ञानरंजन समसामयिक यथार्थ से जूझते नज़र आते हैं । इस क्रम में वे अपने कथा-विन्यास में यथार्थ की अभिव्यक्ति के लिए विवरणों एवं वर्णनों का विशेष रूप से विधान करते हैं । इनकी कहानियों का ऊपरी और बाहरी ढांचा एवं स्थिति, उसका विश्लेषण उससे निर्मित मन:स्थिति द्वारा होता है । कहीं-न-कहीं जब ज्ञानरंजन पात्रों की मन:स्थिति का विवरण या वर्णन मनोविश्लेषण की तर्ज पर करते हैं, तब उनके पात्र मध्यवर्ग की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक इत्यादि चेतनाओं को कुछ इस तरह प्रतिबिंबित करते हैं कि उनके माध्यम से उस युग का समाज ही उनकी कहानियों में बोल पड़ता है ।

ज्ञानरंजन की कहानियों के केंद्र में है नगर । वे नगर को ही लिखने वाले कथाकार हैं । उनकी कहानियाँ उनके उत्कृष्ट नगरबोध की परिचायक हैं । साठोत्तरी कहानी की यह चेतना ज्ञानरंजन का अधिकार क्षेत्र है । उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर शहरी मध्यवर्ग को ही अपनी कहानियों का विषय बनाया । वस्तुत: स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज में शहर गाँवों के मुकाबले अधिक संभावनाशील नज़र आते हैं एवं वे भविष्य के भारत का चेहरा बनते दिखते हैं, इसलिए ज्ञानरंजन ने अपनी कहानियों में शहर की ही खोज की है । वे पारिवारिक विघटन, व्यक्तिवादी प्रवृत्ति, नगरीय-महानगरीय जीवन के फर्क़, आर्थिक तंगी, भीड़-भरी ज़गह पर एकाकी जीवन, एकरसता, हीनग्रंथि, स्नायुरोग-आत्महत्या, बाज़ार के सच, टूटती मर्यादाओं, अवमूल्यन से गुज़रते स्वस्थ मूल्यों के बीच

नगर की ज़िंदगी के विविध चेहरे की अपनी कहानियों के माध्यम से खोज करते हैं।

ज्ञानरंजन ने अपनी कहानियों में मध्यवर्ग के 'ट्रीटमेंट' के लिए व्यंग्य को हथियार के रूप में प्रयुक्त किया है। यह स्वयं में हिंदी कहानी में भाषा के नए तेवर का स्फुरण है। यह भाषा बेहद ही मारक और निर्मम है। ज्ञानरंजन के व्यंग्य का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है। यह व्यक्ति, वर्ग, समाज और देश की रूढ़ियों, छद्म, विंडबनाओं और विसंगतियों को समग्रता में अपने प्रहार का लक्ष्य बनाता है। यहाँ ज्ञानरंजन बेहद निडर कलाकार नज़र आते हैं। वे जीवित यथार्थ को महत्त्व देते हैं और यही उनके व्यंग्य को धार देता है। इस क्रम में वे आत्मव्यंग्य और व्यंग्य दोनों ही स्थितियों से गुज़रते हैं। एक तरफ़ वे अपनी न्यूनताओं की ख़बर लेते हैं तो दूसरी तरफ़ अपने समाज की। व्यंग्य ने उनकी कहानियों को आक्रामकता से तो जोड़ा ही है, इसके साथ ही उसे अर्थ प्रदान करते हुए कहीं अधिक संप्रेष्य एवं प्रभावी बनाया है।

ज्ञानरंजन की कहानियाँ अपने समय की निर्मिति हैं ; इनमें मध्यवर्ग का प्रत्येक स्पंदन अंकित है। ज्ञानरंजन ने इस वर्ग के अनैतिहासिक और गैर-प्रगतिशील रवैये को अपनी कहानियों में आलोचनात्मक रुझान के साथ प्रस्तुत किया है। इस क्रम में वे अपने अद्‌भुत युगबोध का परिचय देते हैं। ज्ञानरंजन ने समय की त्रासदी और आंतरिक वेदना, विसंगति-विडंबना का एक संपूर्ण बोध मध्यवर्गीय चरित्रों के संदर्भ में नियोजित कर अपने कलाकार एवं अपने समाज के साथ न्याय करने की चेष्टा की है। इस क्रम में वे सार्थक साहित्य की सृष्टि भी कर जाते हैं, यह साहित्य उन्हें उनके युग में एक अलग पहचान प्रदान करता है। इसलिए गिनती की थोड़ी-सी कहानियाँ लिखकर भी वे

हिंदी के उन कहानीकारों में गिने जाते हैं, जिनके उल्लेख के बिना हिंदी कहानी विधा का साहित्येतिहास अधूरा माना जाता है।

ज्ञानरंजन की कहानियों पर प्राय: निष्ठुरता एवं निर्ममता का आरोप लगता है। वस्तुत: ज्ञानरंजन निष्ठुर एवं निर्मम अवश्य हैं, परंतु अपने युग की विडंबनाओं-विसंगतियों के प्रति ; वे कहीं भी सकारात्मक मानवीय मूल्यों के प्रति उपर्युक्त रवैया नहीं अपनाते हैं, ना ही उन्होंने संबंधों में भावशून्यता को महत्त्व दिया है, बल्कि वे तो उन कारणों की खोज कर उन पर आघात करते हैं, जो इन स्थितियों के मूल में हैं। एक ईमानदार कलाकार का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने युग की असंगत स्थितियों एवं उनके कारणों की जांच करे। ज्ञानरंजन ने भी ऐसा ही किया है ; ऐसा करते हुए वे समाज को उसकी न्यूनताओं से परिचित कराते हैं और उसे अनायास ही परिवर्तन के लिए उद्दीप्त करते हैं। वस्तुत: वे यह मानते हैं कि क़तरा-क़तरा मरने से अच्छा है, एक बार मरना और इसीलिए समाज के नासूर को व्यंग्य का नश्तर देकर पूरी निर्ममता से उसकी चीर-फाड़ करते हैं। यह सच है कि शल्य-चिकित्सा कष्ट देती है परंतु यह सामयिक कष्ट परवर्ती समय में दीर्घकालिक आराम देता है और शल्य-चिकित्सा ही इस मर्ज का एकमात्र इलाज भी है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि ज्ञानरंजन की सामर्थ्य एवं सीमा दोनों ही मध्यवर्ग है। वे इसी वर्ग के द्वारा अपने युग की पहचान करते हैं। उन्होंने उच्चवर्ग एवं निम्नवर्ग पर विशेषत: अपनी कलम नहीं चलाई। ऐसा लगता है वे 'एकै साधै सब सधै, सब साधै सब जाय' की पद्धति के हामी हैं। जो भी हो इतना तो सच है कि एक वर्ग विशेष का लेखक होकर भी उन्होंने युगीन यथार्थ को पहचानने में भूल नहीं की है क्योंकि उन्होंने समाज के सबसे बड़े

टुकड़े को अपनी रचना का विषय बनाया है और ऐसा करते हुए वे समाज के एक बड़े हिस्से की सच्चाई को तो पहचान ही जाते हैं। यही एक रचनाकार के रूप में उनकी सबसे बड़ी उपलब्धि और सबसे बड़ी सीमा है क्योंकि इतना तो तय है कि धरती पर हर सच अधूरा होता है और रचना भी इसी क्रम में अधूरी होती है परंतु इस अधूरेपन में भी अपने प्रयोजनों को पूर्ण करने की दृष्टि से वह पूरी होती है और इस अधूरेपन से ही तो आगामी समय में प्राप्त होने वाली पूर्णता की आशा की राह खुलती है याकि नवीन रचनाओं के निर्माण के रास्ते खुलते हैं। ज्ञानरंजन की कहानियाँ असमर्थताओं का नहीं, संभावनाओं का द्वार उन्मुक्त करती हैं।